ISSN : 2277 : 3355

बोधि-चक्र

BOHI-CHAKRA

(New Series)

The Journal of Buddhist History & Culture

VOL. X

Editors
Prof. Suniti Kr. Pathak
Prof. Rajiva Kr. Sinha

Executive Editor
Dr. O.P. Pandey

बौद्ध संस्कृति केन्द्र, पटना
(Centre for Buddhist Culture, Patna)
2020

बोधि-चक्र VOL. X
Bodhi-Chakra (New Series)
The Journal of Buddhist History & Culture

© **बौद्ध संस्कृति केन्द्र, पटना**
(Centre for Buddhist Culture, Patna)
Reg. No. 582.1993-94

2020

ISSN : 2277-3355

Rs. 450.00

Right to translate or to reproduce this periodical or parts thereof are

Published by :
बौद्ध संस्कृति केन्द्र, पटना
(Centre for Buddhist Culture, Patna)
3D, Nishant Regency (Behind Capital Tower)
Fraser Road, Patna-800001
E-mail : baudhhsanskritipatna@gmail.com

Distriibutor's :
Bharati Prakashan
45, Dharamsangh Complex,
Durgakund Road, Varanasi-221010 (India)
Ph.: 0542-2312677, Cell No. : 09305292293
e-mail: bharatiprakashan@gmail.com
Website: www.bharatiprakashan.in

Composed by :
Bablu Computer
Khojwan Bazar, Varanasi

Printed by :
Kumar Graphic
Delhi-110032

Contents

Editorial

1.	**GLIMPSES OF TIBETAN CULTURE** *G.K. Lama*	1-22
2.	**IMPACT OF SAKTISM IN MAKING OF BUDDHIST FEMALE ICONOGRAPHY** *Arvind Mahajan*	23-37
3.	**TRACING THE ANTIQUITIES OF VIKRAMŚILĀ MUSEUM BUDDHIST SCULPTURES IN THE CONTEXT OF STYLISTIC AND ICONOGRAPHICAL DEVELOPMENT** *Sarika Kumari*	38-50
4.	**MAHASTHANGARH A REAPPRAISAL** *Sumanpal Bhikkhu*	51-65
5.	**BODDHIST HERITAGE AND SCULPTURE IN SOUTH KOSHALA** *Krishnakant Lahangir*	66-85
6.	**THE BUDDHIST SCULPTURED PANELS AT DEOGARH, LALITPUR UTTAR PRADESH** *Dr. Neeta Yadav*	86-91
7.	**भारतीय कला पर बौद्ध धर्म का प्रभाव (अजन्ता के विशेष सन्दर्भ में)** *प्रो. सोनू द्विवेदी 'शिवानी'*	93-99
8.	**स्त्री अस्मिता के प्रश्न एवं बौद्ध साहित्य** *प्रो. प्रतिभा, डॉ. भारती दीक्षित*	100-105
9.	**मिथिला के मधुबनी जिला के बौद्ध-स्थल : दशा-दिशा** *प्रो. नरेन्द्र नारायण सिंह 'निराला'*	106-115
10.	**कुशीनगर की बौद्ध विरासत** *डॉ. रजनी सिंह*	116-123
11.	**पश्चिम चम्पारण की बौद्ध कला की विरासत** *डॉ. नम्रता कुमारी*	124-128
12.	**बौद्धतीर्थ स्थल राजगृह का सांस्कृतिक वैभव** *प्रियेश कुमार*	129-131
13.	**जातक कथाओं में वर्णित नारी की स्थिति** *अनुपम कुमारी*	132-138

स्त्री अस्मिता के प्रश्न एवं बौद्ध साहित्य

प्रो. प्रतिभा*
डॉ. भारती दीक्षित**

स्त्री अस्मिता अर्थात् स्त्री की अपनी स्वतंत्र पहचान। व्यापक रूप से स्त्री अस्मिता को स्त्री के अस्तित्व, उसके अधिकार एवं उसकी अन्तर्निहित शक्तियों की पहचान से जोड़कर देखा जाता है। वस्तुतः स्त्री अस्मिता का प्रश्न वर्तमान देश-काल की परिस्थितियों से उपजा प्रश्न नहीं है, अपितु सभ्यता के विकास क्रम में चिन्तन के सभी सोपानों में स्त्री अस्मिता के प्रश्न अभिव्यक्ति पाते रहे हैं। वैदिक युग में यज्ञोपवीत, शिक्षा, वर-चयन, नियोग, पुनर्विवाह जैसे अधिकारों के तेज-पुंज से समन्वित स्त्री सूर्या सावित्री के रूप में प्रकट होती है, जिन्होंने आज से पांच हजार वर्ष पूर्व विवाह सूक्त रचकर विवाह नामक संस्था का सूत्रपात कर अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का परिचय दे दिया था।[1] इसी तरह रोमशा का अपने पति से कहा गया वाक्य -"मेरे गुणों को विचारो, मेरे कार्यों में अपने समक्ष छोटा न मानो" स्त्री-अस्मिता का उद्घोष ही है। वैदिक काल की एक अन्य ब्रह्मवादिनी थीं घोषा। ऋषि दीर्घतमा की पौत्री और ऋषि काक्षावत् की पुत्री घोषा का विवाह त्वचा रोग के कारण नहीं हो सका और वह पिता के घर ही वृद्ध हो चलीं। अन्ततः अश्विनी कुमारों ने उनकी प्रार्थनाओं से प्रसन्न होकर उन्हें रोगमुक्त किया। उनकी एक कविता है, जिसमें उनकी स्त्रीगत इच्छाओं का बांध टूट कर बह रहा है। वे कहती हैं - "मेरे भीतर नारी का जन्म हो गया है, उसे आने दो। इच्छाओं की सहेली से मिलने दो। उसके लिए बेलों को फैलने दो। नदी-नालों को बहने दो। उसे ऐसे पति, जो किसी से जीता न जा सके के संसर्ग का अधिकार प्राप्त करने दो।"[3]

बौद्ध साहित्य में अनेक विदुषी परिव्राजिकाओं का उल्लेख प्राप्त होता है जो सांसारिक सुखों से दूर रहकर साधना, अध्ययन एवं मनन का जीवन व्यतीत क[illegible] हि[illegible] में महाप्रजापति, खेमा, किसा गौतमी, उत्पलवण्णा, वाजिरा, सुखा, [illegible] विदुषी भिक्षुणियों में उल्लेख हमें प्राप्त होता है। इनमें खेमा के प्रकाण्ड दार्शनिक ज्ञान तथा सूक्ष्म विवेचन से तत्कालीन राजा प्रसेनजित भी आश्यर्चचकित थे, और उनकी ख्याति दूर-दूर तक प्रसारित हो गई थी।[5] इसी प्रकार वाजिरा सन्त ज्ञान में प्रगाढ़ थी तथा कुंडलकेशा का ज्ञान अत्यन्त उच्च था।[6] अपनी साधना एवं विद्वता से इन भिक्षुणियों ने मोक्षाधिकार प्राप्त किया था।[7]

---

* आचार्य, इतिहास विभाग, निदेशक-यू.जी.सी. महिला अध्ययन केन्द्र, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

** सहाचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, शहीद मंगल पाण्डेय राजकीय महिला महाविद्यालय, मेरठ

ऐसी सम्मान्य भिक्षुणियों अथवा थेरियों का विस्तृत विवरण हमें 'थेरीगाथा' से प्राप्त होता है। लगभग सतहत्तर थेरियों के गीतों को स्वर देने वाले 'थेरीगाथा' को नारीवादी चिंतन और स्त्री-विमर्श के 'प्रस्थान-बिंदु' तक की संज्ञा दी जाती है। ये थेरी गाथाएं विद्रोहिणी स्त्री के सबल स्वरों को अत्यन्त सरल रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए एक स्त्री घोषित करती है कि मेरी जिंदगी दो उंगली (चावलों के पतीले में डालकर पके हुए देखना) और सिलबट्टे तक ही सीमित नहीं है।

परंतु निस्संदेह यह मुक्ति-मार्ग इतना आसान नहीं था। बौद्ध संघ और उसके माध्यम से समानता और निर्बन्धता के लिए की गई यह यात्रा कठिन रास्तों से होकर ही गुजरी।

यथाविदित है कि बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव वैदिकी अतिवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था और इस नाते इस अतिवाद से उपजी विसंगतियों और त्रुटियों के निवारण का जिम्मा भी उसका था। वह समय वेदों के "धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।" और गीता के "तस्माच्छास्त्र प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थिते" के अनुसार 'शास्त्रवाद' की प्रतिष्ठा का समय था, शास्त्रों की मान्यता का समय था।[8] बुद्ध ने इस 'शास्त्रवाद' की जगह अनुभव एवं बुद्धि के समन्वय को अपने उपदेशों के माध्यम से प्रतिष्ठापित किया। क्रांतिकारी बुद्ध ही यह घोषणा कर सकने में सक्षम थे कि "रूढ़ियों एवं परम्पराओं से माना जाने वाला सत्य, सत्य नहीं है, अपितु स्वानुभूति से प्रतीत हुआ तथ्य ही सत्य है।"

यहाँ तक कि स्वयं के द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तों को भी विवेक-स्वविवेक की कसौटी पर कसकर परखने के बाद ही मानने का उनका आग्रह था। वे अपने लिए स्वयं रास्ता बनाने अर्थात् 'अप्पदीवो भव' के हिमायती थे, जो अच्छी या बुरी गति के लिए स्वयं उस व्यक्ति को ही उत्तरदायी मानते थे और घोड़ों के व्यापारी द्वारा घोड़े की भांति मन को वश में रखने का उपदेश देते थे-

"अत्ता ही अत्तनो नाथो
अत्ता हि अत्तनो गतिः
तस्मा संयम यत्तानं
अस्सं भद्रं व वाणिजो।"[9]

यह भी बुद्ध के ही बूते की बात थी कि उन्होंने धर्म के बाह्य आचारों की अपेक्षा सदाचार और शुद्ध जीवन पर जोर देते हुए कभी भी अपने लिए ईश्वरत्व, ईश्वर के दौत्य अथवा अलौकिक अतिमानवी शक्ति का दावा न करके, वर्णाश्रम धर्म को चुनौती देते हुए सामान्य 'मनुष्य' को सम्मान दिया था।

इसलिए बुद्ध यज्ञादि धार्मिक क्रियाओं और पितरों की शान्ति के लिए जरूरी मानी जाने वाली तर्पण जैसी क्रियाओं पर विशेष अधिकार रखने वाले पुत्र को महत्व देने वाली व्यवस्था को क्योंकर स्वीकारते? बौद्ध धर्म तो तर्पण आदि में विश्वास ही नहीं करता था और बुद्ध की व्यवस्थानुसार पुत्रहीन व्यक्ति भी निर्वाण प्राप्ति का उतना ही अधिकारी था। अतः यह

स्वाभाविक है कि वैचारिक दृष्टि से उनके यहाँ पुत्र और पुत्री समान रूप से वांछनीय थे।[10] ***जातक*** में ब्रह्मदत्त नामक एक व्यक्ति पुत्र अथवा पुत्री के लिए प्रार्थना करता है।[11] ***दीघनिकाय*** में बुद्ध का कथन है कि नारी में कोई क्षुद्रता नहीं है। एक उदाहरण हमें प्रसेनजित से जुड़ा मिलता है जब उनके यहाँ कन्या होने पर शोक मनाया जा रहा था, तब बुद्ध ने कहा कि पुत्री पुत्र के बराबर नहीं होती, वह तो उससे बढ़कर होती है।[12] ***संयुक्त निकाय*** में महात्मा बुद्ध कहते हैं कि कभी-कभी पुत्री पुत्र की अपेक्षा अधिक श्रेयसकारी सिद्ध होती है।[13]

लेकिन स्त्री-पुरुष समानता के हिमायती बुद्ध द्वारा प्रवर्तित समतावादी बौद्ध धम्म के संघ में भी प्रवेश के लिए स्त्रियों को छः वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। यहाँ तक कि स्वयं बुद्ध इस प्रश्न पर संशय, असमंजस और ऊहापोह से भरे हुए थे और माता गौतमी तथा पत्नी यशोधरा के आग्रह को बार-बार अस्वीकार कर रहे थे। संभवतः सामाजिक ताने-बाने को पूरी तरह छिन्न-भिन्न होने से बचाने का विचार इसके पीछे था। साथ ही, अभी तक संघ शैशवावस्था में ही था, शील और नैतिकता बौद्ध धर्म के आधार स्तम्भ थे, तो उनके संरक्षण और संघ प्रवेश के बाद स्त्रियों की सुरक्षा के प्रश्न भी बुद्ध को मथ रहे होंगे। जो भी हो, मानवीय दुर्बलताओं की परख बुद्ध को थी और संघ में स्त्री-प्रवेश-निषेध द्वारा उन दुर्बलताओं को सतह पर आने से रोकना उनका उद्देश्य था।

विनयपिटक के ***चुल्लवग्ग*** में विस्तार से वर्णित है कि कैसे तब स्त्री समानता के प्रबल पक्षधर बुद्ध के प्रिय शिष्य आनन्द ने यह बीड़ा उठाया। लम्बे तर्क वितर्क में आनन्द ने बुद्ध से पूछ लिया कि प्रव्रज्या दिए जाने पर स्त्रियां निर्वाण प्राप्त करने में समर्थ तो हैं न? बुद्ध निरुत्तर हो कह उठे हां, क्यों नहीं ! आनन्द तो इसी मौके की तलाश में थे, और तब पांच सौ स्त्रियों के साथ गौतमी संघ में प्रविष्ट हुई।

थेरीगाथा के वर्णनों के अनुसार गौतमी प्रथम भिक्षुणी थी जो अपनी पति की मृत्यु के बाद 12 स्त्रियों के साथ संघ में प्रविष्ट हुई। वहीं अवदान साहित्य प्रथम भिक्षुणी उन्हें न स्वीकार कर यशोधरा को स्वीकारता है जो अठारह हजार स्त्रियों के साथ संघ में प्रविष्ट हुईं। हां, उपासिका के रूप में भिक्षु यश की माता और पत्नी आदि का उल्लेख धर्मचक्रप्रवर्तन के बाद से प्राप्त होने लगता है।[14]

स्त्रियों के बौद्ध संघ में प्रवेश के पश्चात् बुद्ध की चिन्ता और आशंका आनन्द से कहे उनके इस कथन से झलकती है- "पर जब स्त्रियों का प्रवेश हो गया है आनन्द! धर्म चिरस्थायी न रह सकेगा....। जिस प्रकार धान के खेत पर पाला पड़ जाय तो वह अधिक नहीं टिक सकता, अथवा जिस प्रकार गन्ने की खेती लाल बीमारी से, जिसमें पौधों में कीड़े लग जाते हैं, मारी जाती है, उसी प्रकार आनन्द ! उस सूत्र और विनय की दशा होती है, जिसमें स्त्रियों को घर छोड़कर गृहविहीन जीवन में प्रवेश करने का अधिकार मिल जाय। फिर भी आनन्द ! मनुष्य जैसे भविष्य को सोचकर जलाशय के लिए बांध बनवा देता है, जिससे जल बाहर न बहने लग जाए, उसी प्रकार आनन्द! भावी के लिए मैंने ये आठ कठोर नियम बना दिए हैं, जिनका पालन

भिक्षुणियों के लिये अनिवार्य है। जब तक धर्म है, उन नियमों के पालन में प्रमाद नहीं होना चाहिए।"[15]

यहाँ विचारणीय है कि एक प्रकार से बौद्ध धर्म के चिर-स्थायित्व से समझौता करते हुए भी बुद्ध ने भिक्षुणी संघ की स्थापना की, उन पर आठ नैतिक नियम लागू करते हुए। इनके अनुसार युवा भिक्षुणियों को सदैव वृद्ध भिक्षुणियों के सानिध्य में रहना होता था और वृद्ध से वृद्ध भिक्षुणी को भी युवा सन्यासी को प्रणाम करना होता था। एक तरह से भिक्षुणियों को भिक्षुओं के अधीन रहना होता था।[16] इस नियम का विरोध भी हुआ। कुछ विद्वानों के मत में संघ का रुढ़िवादी भिक्षु-समूह इन निर्णयों के पीछे था। परन्तु इससे एक बात तय है कि संघ में स्त्रियों का प्रवेश इतना आसान नहीं रहा।

क्या सचमुच स्त्रियाँ मोक्ष के मार्ग में बाधक थीं, या उनकी मेधाओं से भयभीत पुरुष मानसिकता, आध्यात्मिकता को मात्र पुरुषों के लिए सुरक्षित रखना चाहती थी? हिन्दुत्व के सांसारिक मार्ग के विरोध में सन्यास के भाव और विचार को बनाए रखना युक्त भी था।

अन्ततः विघ्नों, बाधाओं को पार कर स्त्रियों का संघ में प्रवेश कर पाना क्रांतिकारी कदम था। इससे सिद्ध हो सका कि -

- स्त्री को भी पुरुष की भांति संयमी जीवन जीने का अधिकार है।
- स्त्रियाँ निर्वाण प्राप्त करने की अधिकारी हैं।
- सार्वजनिक जीवन व समाज सेवा का क्षेत्र स्त्रियों के लिए भी है।

अवसरों की यह समानता प्राप्त होते ही समाज-सेवा और अध्यात्म का विस्तृत संसार स्त्रियों के लिए खुल गया। ज्ञान के अर्जन और इसके द्वारा सम्मान के अर्जन की वे आधिकारिणी बनीं। विविध सामाजिक कार्यों में वे भाग लेने लगीं और अपने आरोग्यकारी स्पर्श द्वारा पीड़ित मानवता का दुख हरने लगीं। इस तरह समाज सेवा को नए आयाम प्राप्त हुए।

स्त्रियों के भिक्षु संघ में प्रवेश की यह प्रक्रिया अब अबाध गति से चल पड़ी। अशो[illegible] की पुत्रियों चारुमती और संघमित्रा सहित अनेकों रानियाँ, राजकुमा[illegible] याँ में दीक्षित हुईं। किसा, सुजाता, पूर्णा, धीरा, चाला, उपचाला, सुम[illegible] आदि साथ-साथ बिम्बिसार की रानी खेमा, धनाढ्य सेठ की कन्या विशाखा, वैशाली की नगर वधू अम्बपाली विशेष उल्लेखनीय हैं। भिक्षुणी खेमा उस युग की उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्री थीं, जिनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली थी।[17]

संघ से अनेकों ज्ञानवती स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं और उनके से कुछ ने गुरु के रूप में युवती भिक्षुणियों की पवित्र ग्रन्थों पर अधिकार करने में सहायता की। ***चुल्लवग्ग*** ऐसी ही एक भिक्खुनी उप्पलवन्ना का उल्लेख करता है।[18] स्त्रियाँ सफल वक्ता और धर्मोपदेशक भी बनीं। 'सुक्का' नामक एक भिक्षुणी को सुनने के लिए जन-सैलाब उमड़ने का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में है।

स्पष्ट रूप से स्त्रियों ने अपने व्यक्तित्व को निखारने के साथ ही प्रारम्भिक बौद्ध धर्म के उन्नयन में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने न केवल बौद्ध धर्म के आधार को विस्तृत कर उसे सुदृढ़ होने में सहायता दी, अपितु विशाल भिक्षु-संघ के जीवन-यापन के प्रश्न का भी समाधान दानादि के द्वारा किया।

अंगुत्तर निकाय की बुद्धघोषकृत टीका ***'मनोरथपूरनी'*** में एक रोचक प्रसंग है, उन स्त्रियों पर केन्द्रित है, जिन्हें बुद्ध अपनी प्रमुख शिष्यायें स्वीकार करते हैं। उनमें से अनेक संघ में प्रविष्ट हुई और 'थेरी' के नाम से जानी गयीं। ऐसी ही 13 थेरियों का उल्लेख उनकी आध्यात्मिक विशिष्टताओं के कारण स्वयं बुद्ध द्वारा किया गया। इन्होंने अपनी साधना के द्वारा अर्हत् पद प्राप्ति किया था। बौद्ध धर्म की लब्ध प्रतिष्ठ प्रचारिका धम्मदिन्ना की आध्यात्मिक बुद्धि इतनी प्रखर थी कि वे कठिन से कठिन प्रश्नों का समाधान सहजता से कर देती थीं।[19] इनमें से कई थेरियों ने मिशनरी कार्यों का जिम्मा उठाया।

ऐसा नहीं कि भिक्षुणी स्त्रियाँ ही बुद्ध के सम्मान और प्रशंसा की पात्र थीं। बौद्ध ग्रन्थों में अनेकों उपासिकाओं की प्रशंसा बुद्ध द्वारा की गई है। श्रावस्ती की समृद्ध महिला विशाखा के दान तथा बौद्ध धर्म के प्रति समर्पण का उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलता है। एक अन्य उल्लेखनीय उपासिका सप्पिय थी जिसने अपनी जांघ के मांस को काट कर एक रुग्ण भिक्षु की सेवा की थी।[20] गृहस्थ स्त्रियों और बच्चियों के प्रति भी बुद्ध के सम्मान और स्नेह का वर्णन है। कन्याओं के विवाह के समय निमंत्रित किए जाने पर बुद्ध यथासमय उपस्थित होकर वर कन्या को आशीष देते थे। स्त्रियों पुरुषों के पारस्परिक दायित्वों के वर्णन, स्त्री कृषिकाओं, श्रमिकाओं के वर्णन उन्हें कमोबेश समाज में सम्मानजनक स्थान देने के लिए पर्याप्त हैं। ***धम्मपद*** टीका में अनेक स्त्रियाँ कृषि-कर्म करती, सूत कातती तथा कपड़ा बुनती प्रदर्शित की गई है।[21] हार्नर के अनुसार 'स्त्रीधन' (पालि शब्द इत्थिधन) स्त्रियों की सम्पत्ति का एक विशेष अंग था।[22] ***थेरीगाथा*** के अनुसार भी मातृहीन कन्या अपने पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती थी।

जहाँ तक ***जातक*** कथाओं का प्रश्न है, वहाँ कई बार अन्तर्विरोधी प्रसंग हमें मिलते हैं। सामाजिक ढांचे में स्त्री की अधीनस्थ स्थिति के संकेत मिलते हैं। उसे यदि संघ में प्रवेश करना होता था, तो पति की पूर्व आज्ञा आवश्यक थी। वहीं यदि पति चाहता तो आसानी से सन्यास ले सकता था। ***दीघनिकाय*** में सन्यास के लिए तत्पर पति से जब पत्नी कहती है कि आपके सन्यास के बाद मेरा क्या होगा? तो पति कहता है कि बच्चों को लेकर अपने पिता के पास चली जाओ। अनेक बार स्त्री निन्दा के प्रसंग हम जातक कथाओं में पाते हैं। निश्चित रुप से इन्हें सन्दर्भगत रूप से देखना होगा। बौद्ध धर्म हिन्दुओं के विवाह, गृहस्थ धर्म आदि के विरोध पर ही खड़ा है। तो इनके पक्ष में भिक्षुओं को टिकाए रखने के लिए सांसारिक जीवन से उन्हें विरत करना बहुत जरूरी था। एक प्रकार से बुद्ध का उद्देश्य भिक्षुओं को गृहस्थ स्त्रियों के सम्पर्क से दूर रखने और पतनोन्मुख होने से बचाने का था, अतः उन्हें प्रेरित करने हेतु स्त्री

के नकारात्मक पक्षों पर जोर दिया जाना आवश्यक था। बुद्ध की मृत्यु के बाद संघ को विघटनकारी ताकतों से बचाना भी एक चिन्ता थी।

इसी तरह बौद्ध धर्म में स्त्रियों की वस्तुतः स्थिति को जानने के लिए हमें तत्कालीन राजनैतिक-सामाजिक ढांचे, तीव्र गति से हो रहे परिवर्तनों, युद्धों, प्रवास आदि की पृष्ठभूमि का भी ध्यान रखना होगा। लेकिन सामान्यतः बौद्ध धर्म के माध्यम से स्त्री के मुक्त जीवन के स्वप्न को एक विस्तार तो अवश्य मिला, इसमें सन्देह नहीं।

संदर्भ सूची :

1. सूर्यकान्त बाली, *भारत के मील पत्थर,* नवभारत टाइम्स, 25 दिसम्बर, 1994
2. आशा रानी व्होरा, *नारी विद्रोह के भारतीय मंच,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1991, पृ. 10
3. वही, पृ. 11
4. विमलचन्द्र पाण्डेय, *भारत वर्ष का सामाजिक इतिहास,* हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1960, पृ. 117, 118
5. ***संयुक्तनिकाय,*** 12.2
6. ***जातक,*** 542
7. ***संयुक्तनिकाय,*** 1.5, 6
8. सिद्धेश्वर भट्ट, *मानव की सेवा में विश्व के प्रमुख धर्म,* विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 94
9. डी.आर. जाटव, *बौद्ध धर्म और मानववाद,* ए.बी.डी. पब्लिशर्स, जयपुर, पृ. 78
10. विमलचन्द्र पाण्डेय, पृ. 105
11. ***जातक,*** 5.21
12. ***दीघनिकाय,*** 4
13. ***संयुक्तनिकाय,*** 3.2.6
14. हरीश कुमार बालूजा, *भारत में बौद्ध धर्म और मानवाधिकार,* विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 30
15. वही, पृ. 30
16. राहुल सांकृत्यायन, *मज्झिम्म निकाय,* (अनुदित), 3.1.4
17. ***थेरीगाथा,*** 170-171
18. ***चुल्लवग्ग,*** 10.8
19. हरीश कुमार बालूजा, वही, पृ. 42
20. ***महावग्ग,*** 6.22
21. ***धम्मपद टीका,*** 113
22. एल.बी. हार्नर, *विमेन अंडर प्रिमिटिव बुद्धिज्म,* (द्वि.सं.) मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली.

●